प्रतिभा की प्रतीक्षा में

लू शून

(1924 की 17 जनवरी की बेजिंग नार्मल विश्वविद्यालय के
मिडिल स्कूल के भूतपूर्व छात्रों के बीच दिया गया भाषण)

मुझे डर है कि मेरी बातचीत आपके किसी काम या दिलचस्पी की नहीं होगी क्योंकि वाकई मुझे कोई खास ज्ञान नहीं है। मगर काफी अर्से तक इसे टालने के बाद, अंत में मैं आप से दो बातें करने के लिए यहां आया हूं।

मुझे लगता है आज के लेखक तथा कलाकारों से जो तमाम मांगें की जाती हैं उन में सबसे जोरदार मांग प्रतिभा की मांग है। यह दो चीजें साफ-साफ प्रमाणित करती है पहली बात यह है कि फिलहाल चीन में कोई प्रतिभा नहीं है, दूसरी यह कि हमारे आधुनिक कला-साहित्य से सभी लोग थके और ऊबे हुए हैं। तो क्या वाकई कोई प्रतिभा नहीं है? हो भी सकती है मगर हमने किसी को नहीं देखा और न ही किसी दूसरे ने देखा। लिहाजा हमारे आंख और कान के निर्णय से हम यह कह सकते हैं कि हमारे यहां सिर्फ प्रतिभा नहीं है यह बात नहीं है, यहां तक कि प्रतिभा प्रस्तुत करने लायक जनता भी नहीं है।

प्रतिभा प्रकृति की कोई अजूबा चीज नहीं है जो घने जंगल में या बीहड़ में पैदा होती हो। बल्कि ऐसी चीज है, एक खास ढंग की जनता जिसे जन्म देती है तथा पालती-पोसती है। एल्पस पर्वत पार करते समय नेपोलियन ने घोषणा की थी, 'मैं एल्पस से ऊंचा हूं।' मगर जब वे यह भव्य वक्तव्य दे रहे थे तब उनके पीछे कितनी विशाल सेना थी, यह हमें कतई नहीं भूलना चाहिए। यह सेना न रहने पर दूसरे पक्ष की सेना के हाथों वे आसानी से पकड़े जाते या पीछे हटते, और तब उनका आचरण तथा शेखी बहादुराना लगने की बजाए, पागलों जैसा लगता। इसीलिए मुझे लगता है कि किसी प्रतिभा के आविर्भाव की उम्मीद करने से पहले हमारी मांग प्रतिभा पैदा करने में समर्थ जनता की होनी चाहिए। क्योंकि, अगर खूबसूरत पेड़ या फूल चाहते हैं, तो उससे पहले हमें अच्छी जमीन तैयार करनी होगी। वास्तव में, फूल और पेड़ से मिट्टी ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसके बगैर कुछ भी पैदा नहीं हो सकता। फूल और पेड़ के लिए मिट्टी निहायत ही जरूरी है। ठीक वैसा ही जैसा कि नेपोलियन के लिए अच्छी सेना।

फिर भी इस समय की घोषणा और प्रवृत्ति पर विचार करते हुए प्रतिभा की मांग तथा उसके ध्वंस का प्रयास साथ-साथ जुड़ा हुआ है - जिस मिट्टी में वे पैदा हो सकते थे कुछ लोग तो उसे बुहार कर निकाल देना चाहते हैं। मुझे कुछ मिसाल देने दीजिए:

पहला, 'हमारी राष्ट्रीय संस्कृति का पुनरुद्धार करण' को लिया जाए। हालांकि चीन में नए विचार कभी भी ज्यादा नहीं बढ़ सके, कुछ बूढ़े लोग - जवान भी डर के मारे संतुलन खो बैठे हैं और हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के बारे में प्रलाप कर रहे हैं। 'चीन में बहुत सी अच्छी चीजें हैं।' वे हमारा ढाढस बांधते हैं। 'पुराने का अध्ययन तथा संरक्षण की बजाए नए के पीछे दौड़ना हमारे पुरखों के उत्तराधिकारी को खारिज करने की ही तरह ही गलत है।' वाकई, हमारे पुरखों को मिसाल के तौर पर रखना काफी वजन रखता है, मगर यह मैं विश्वास नहीं कर सकता कि पुराने जैकिट को धोकर इस्त्री करके रखने से पहले कोई नया कुछ नहीं बनाया जा सकता। फिलहाल, हालत यह है, हरेक अपने मन की कर सकता है : बूढ़े सज्जन लोग जो हमारे राष्ट्रीय संस्कृति का पुनरुद्धार करना चाहते हैं वे अपने दक्षिण की खिड़की के पास बैठ कर लुप्त पुस्तकों पर अपना दिल बिछाने के लिए स्वतंत्र हैं और युवक लोग अपने जीवन अध्ययन तथा आधुनिक कला को लेकर कह सकते हैं। जब तक हरेक अपनी रुचि का अनुसरण करेंगे, कोई खास नुकसान नहीं होगा। मगर दूसरे को इस झंडे के तले लाने का प्रयास करने का मतलब चीन को दुनिया के बाकी मुल्कों से हमेशा अलग करना होगा। हरेक से इस तरह की मांग और भी विचित्र होगी। जब हम पुरानी कलाकृतियों के व्यापारियों से बात करते हैं, वे स्वाभाविक तौर पर अपनी पुरानी चीजों की प्रशंसा करते हैं, मगर वे कलाकार, किसान, मजदूर तथा दूसरों को अपने पुरखों को भूल जाने के लिए निंदा नहीं करते। असल में वे परम्परागत पंडितों से ज्यादा समझ रखते हैं।

फिर 'मौलिक सृजन के गुणगान' को लीजिए। ऊपरी तौर पर देखने से लगेगा, कि प्रतिभा की मांग के साथ यह जायज है, मगर बात ऐसी नहीं है। विचारों की दुनिया में इससे उग्र राष्ट्रवाद की बू आती है, इसलिए यह चीन को विश्वास जनमत से अलग कर देगा। हालांकि बहुत सारे लोग अभी ही टॉल्सताय, तुर्गनेव तथा दोस्तोविस्की का नाम सुनते-सुनते थक चुके हैं, मगर उनकी कितनी किताबें चीनी भाषा में अनूदित हुई हैं? जो हमारी सीमा के बाहर झांकना नहीं चाहते, वे पीटर और जॉन जैसे नामों से भी नफरत करते हैं और जहां तृतीय अथवा चतुर्थ की ही स्वीकृति देते हैं, इसी रूप में हम मौलिक कृतिकारों को पाते हैं। वास्तव में उनमें जो श्रेष्ठ हैं वे विदेशी लेखकों के चंद कलाविधान व अभिवक्तियों को उधार लेते हैं। उनकी शैली चाहें जितनी भी चमकदार हो, उनका कथ्य अनुवाद से कहीं पीछे पड़ता है और परम्परागत चीनी तौर-तरीकों से उनका तालमेल बैठाने के लिए कुछ दकियानूस विचार भी घुस जा सकते हैं। उनके पाठक लोग इस जाल में फंस जाते हैं, उनके विचार तब तक अधिक से अधिक संकरे हो जाते हैं जब तक कि वे पूरी तरह पुरानी लीक में सिकुड़ नहीं जाते। जब लेखक और पाठक के बीच इस तरह का एक दुष्चक्र मौजूद है, तो तमाम भिन्न संस्कृति को नष्ट करता है तथा राष्ट्रीय संस्कृति का गुणगान करता है, वहां प्रतिभा पैदा कैसे हो सकती है? अगर किसी का अविर्भाव भी हो, तो वह जिन्दा नहीं रह सकती।

इस तरह की जनता मिट्टी नहीं, धूल के समान है और इस में कोई खूबसूरत फूल या बढ़िया पौधे पैदा नहीं हो सकते।

अब, फिर ध्वंसात्मक आलोचना को लीजिए। एक अर्से से, आलोचकों की काफी मांग रही हैं, और अब बहुत सारे आलोचक सामने आए हैं। दुख की बात यह है कि उनमें से काफी लोग आलोचक से ज्यादा छिद्रान्वेषी हैं। ज्यों ही उनके पास कोई कृति भेजी जाती है, नफरत के साथ स्याही में कलम डुबोते हैं और अपनी श्रेष्ठ राय लिख मारते हैं : 'अरे, यह तो निहायत ही बचकानी चीज है। चीन को बस एक प्रतिभा की जरूरत है!'

बाद में, वे लोग भी जो आलोचक नहीं है उनसे सीखते हैं और वही चीख-पुकार मचाते हैं। वास्तव में, जन्म के समय एक प्रतिभा की भी पहली रुलाई किसी साधारण बच्चे की तरह होती है, वह संभवत: कोई सुंदर कविता नहीं हो सकती। और अगर आप किसी चीज को इसलिए पैरों से रौंद डालेंगे कि यह बचकानी है, तो संभवतया वह मुरझा जाएगी या मर जाएगी। मैंने कई लेखकों को देखा है तिरस्कार के कारण वे चुप मार गए हैं। इसमें कोई शक नहीं कि उनमें कोई प्रतिभावान नहीं था, मगर मैं मामूली से मामूली लेखकों को भी रखना चाहूंगा।

जाहिर है, ध्वंसात्मक आलोचकों को अंकुरों पर घोड़े दौड़ाने में बड़ा मजा आता है। इससे जिनको नुकसान पहुंच रहा है वे नये अंकुर हैं - वे दोनों तरह के ही अंकुर हैं साधारण और प्रतिभाशाली भी। बचकानापन में कोई बात नहीं है, क्योंकि लेखन में बचकानापन और परिपक्वता आदमी में बचपन और प्रौढ़ता जैसी ही है। एक लेखक को बचकानी शुरूआत से शर्मिन्दा नहीं होना चाहिए, और उसे पैरों से रौंदा न जाए तो वह परिपक्वता प्राप्त करेगा। पतनशीलता और भ्रष्टाचार ला-इलाज है। जो बचकाने हैं - उनमें कुछ बूढ़े भी हो सकते हैं, जिनका दिल बच्चों जैसा है - मन में जो आता है उसे लिखते हैं - उन लोगों को बचकानी अभिव्यक्ति की मैं छूट देता हूं। जब बात कही जाती है या छप जाती है तो मामला समाप्त हो जाता है। किसी भी आलोचक को उनके प्रति ध्यान नहीं देना चाहिए, चाहें वे जो भी झंडा ढो रहे हों।

मैं यह आस्था के साथ कह सकता हूं कि इस दल के नौ-बटे-दस हिस्से लोग चाहते हैं कि किसी प्रतिभा का आविर्भाव हो। मगर फिलहाल जो हालत है उस परिस्थिति में न केवल प्रतिभा पैदा करना कठिन है, बल्कि ऐसी मिट्टी तैयार करना कठिन है जिससे प्रतिभा उग सके। मुझे लगता है कि जबकि प्रतिभा पैदायशी होती है, मगर वह कोई मिट्टी बन सकता है जिसमें वह बढ़ सके। हमारे लिए मिट्टी मुहैया करना प्रतिभा की मांग करने से ज्यादा यर्थाथवादी है, वर्ना अगर हमारे पास सैकड़ों प्रतिभाएं हों मगर मिट्टी न हो तो तस्तरी पर सेमों के कल्लों की तरह वे जड़ें जमा नहीं पाएंगे।

मिट्टी बनाने के लिए हमें अवश्य उदार बनना होगा। दूसरे शब्दों में हमें नयी अवधारणाओं को स्वीकारना होगा और पुरानी बेड़ियों से हमें मुक्त होना होगा ताकि हम भविष्य की किसी प्रतिभा की सराहना कर सकें तथा उसे स्वीकार कर सकें। हमें छोटे कामों के प्रति अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। मौलिक रचनाकार अपना लेखन जारी रखेंगे, दूसरे लोग अनुवाद करेंगे और साहित्य से परिचय करा देंगे, आनंद लेंगे, पढ़ेंगे या साहित्य को वक्त काटने के काम में लगायेंगे। साहित्य लेकर वक्त काटने की बात कुछ अटपटी लग सकती है, मगर पैरों तले रौंदने से यह बेहतर है।

मिट्टी की तुलना कतई प्रतिभा के साथ नहीं की जा सकती, मगर जब तक हम दृढ़ न हों तथा कष्ट उठाने के लिए तैयार न हों, मिट्टी बनाना भी नामुमकिन है। फिर भी इंसान की कोशिश पर सब निर्भर है, और महज आलसी की तरह ईश्वर प्रेरित प्रतिभा का इंतजार करने की बजाए हम लोगों की सफलता की गुंजाइश यहां ज्यादा है। यही है महान प्रत्याशा, और उस मिट्टी की ताकत तथा उसका पुरस्कार। क्योंकि, जब मिट्टी से एक सुंदर फूल खिलता है, तब सारे देखने वाले उसका आनंद उठाते हैं, मिट्टी खुद भी। अपनी आत्मा को ऊंचा उठाने के लिए तुम्हें खुद फूल बनने की जरूरत नहीं है, बशर्ते यह महसूस कर सको कि मिट्टी की खुद की भी एक आत्मा होती है।

अंत